ब्रिटेन के चुनावी अर्थप्रबंधन एवं भारत के चुनावी अर्थप्रबंधन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. लाल कुमार साह,
ग्रम + पो. – मरूकिया,
थाना– अंधराठाढ़ी,
जिला– मधुबनी

परिचय

ब्रिटेन के चुनाव में चंदा, ऋण और सार्वजनिक फंड जैसे विभिन्न स्रोतों से धन जुटाया जाता है। पॉलिसी डेवलपमेंट ग्रांट के रूप में 20 लाख पौंड प्रति वर्ष मिलता है। हाउस ऑफ कॉमन्स से शॉर्ट मनी और हाउस ऑफ लॉर्ड्स से क्रेनबोर्न राशि मिलती है। वर्तमान समय में ब्रिटेन के संसदीय चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा किए जाने वाले खर्च का निर्धारण एवं नियंत्रण, राजनीतिक दलों, चुनाव एवं मत–संग्रह अधिनियम की धारा 2000 के तहत किया जाता है। इसके अनुसार प्रत्येक उम्मीदवार द्वारा चुनाव में अधिकतम निर्वाचन व्यय की सीमा 14 मीलियन पौंड निर्धारित किया गया है। राजनीतिक दलों, चुनाव एवं मत–संग्रह अधिनियम की धारा 2000 के अधीन निर्धारित सीमा से अधिक व्यय किया जाना एक भ्रष्ट आचरण है। निर्धारित सीमा से अधिक व्यय करने पर अगर जाँच में सही पाया जाता है तो प्रत्याशी का निर्वाचन रद्द कर दिया जाता है। ब्रिटेन के संसदीय चुनाव से संबंधित खर्च की अनियमितता से कोई भी राजनीतिक दल अछूता नहीं है, इन अनियमितता की वजह से सभी राजनीतिक दलों की जो तस्वीर प्रकट हो रही है वह यहाँ के संसदीय पणाली के लिए एक भयंकर संकट की सूचना है।[1]

ब्रिटेन के संसदीय चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा विज्ञापनों, पार्टी के घोषणा पत्रों, पार्टी के राजनैतिक विचारों के प्रसारण, मीडिया के साथ सौदा, परिवहन, रैलियों, प्रेस कांफ्रेसों एवं अन्य आयोजनों पर करोड़ों रूपया खर्च किया जाता है। राजनीतिक दलों, चुनाव एवं मत–संग्रह अधिनियम 2000 के अनुसार चुनाव समाप्त होने के बाद प्रत्येक राजनीतिक दलों को चुनाव में विभिन्न मदों में किए गए खर्च का विवरण एक निश्चित तिथि के भीतर देना अनिवार्य है। नहीं देने पर कानूनी कारवाई का भी प्रावधान है जिसमें निश्चित राशि दण्ड के रूप में देना पड़ता है या राशि के साथ–साथ सजा भी हो सकता है।

ब्रिटिश शासन प्रणाली में अर्थप्रबंधन से संबंधित चरित्र के बारे में सभी जानकार यह जानते हैं कि वे लोग अपने शासन को जारी रखने के लिए दो तरीके अपनाता है। एक है इसके शोषणमूलक चरित्र को छिपाने के लिए मोह–भ्रम (इल्यूजन) पैदा करना और दूसरा है लोगों के ऊपर राजसत्ता द्वारा दमन–उत्पीड़न चलाना। वह मोह–भ्रम पैदा करने के लिए संसदीय प्रणाली का इस्तेमाल करता है और दमन–उत्पीड़न के लिए फौज–फलिस, अफसरशाही और कानून आदि का इस्तेमाल करता है। वह मोहजाल फैलाने के लिए संसदीय प्रणाली का निरन्तर गुणगान करता रहता है।[2]

ब्रिटेन के प्रधान मंत्री की संसदीय व्यवस्था और तानाशाही के बीच कोई खास अन्तर नहीं है; और यह भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि कार्यकारी राष्ट्रपति प्रणाली भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं होती है। हाल ही में ब्रिटिश प्रधानमंत्री को कई चुनावी अनियमितता वजह से गद्दी छोड़नी पड़ी थी। कई चुनावी अर्थप्रबंधन से सम्बन्धित बिसंगतियों के कारण प्रधानमंत्री को बेइज्जती से हटाना पड़ा था और उनके कई एक वरिष्ठतम अफसरशाहों को जेल की हवा खानी पड़ी थी। ख्याल रखना चाहिए कि ब्रिटिश शासन प्रणाली भी सामरिक व गैर–सामरिक अफसरशाहों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, अपराधियों और उसके पिछलग्गू राजनीतिज्ञों का ही गठबंधन है, जो शासन का संचालन करता है। ब्रिटिश संसदीय राजनीति का चरित्र लम्बे समय पहले से और अधिक जनवादी रहा ही नहीं है वरन् वह एक संसदीय पार्टी और राजनीतिज्ञों के खिलाफ दूसरी संसदीय पार्टी व राजनीतिज्ञों का यौन–विकृति एवं काला धन बटोरने का आरोप लगाने का माध्यम भर रह गई और इसी राजनीति में संघीय जांच ब्यूरो जैसी संस्थाओं को एक–दूसरे के खिलाफ तथ्य संग्रह करने के औजार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। विश्व–भर में ही सभी पूँजीवादी–साम्राज्यवादी मुल्कों में यह संसदीय चुनाव प्रणाली तो भ्रष्टाचार का ही एक इतिहास रच रही है। ब्रिटेन के कई प्रधानमंत्रियों को भ्रष्टाचार में लिप्त होने के कारण सत्ता छोड़नी पड़ी और जेल की रोटियां खानी पड़ी। फ्रांसीसी या अंग्रेजी, कोई भी संसदीय प्रणाली इस भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है।[3]

भारत के चुनाव में अर्थप्रबंधनः–

आज हर भारतीय के अंदर संसदीय चुनाव प्रणाली एवं अर्थप्रबंधन की नीति के बारे में एक गहरी निराशा छा गई है। संसदीय चुनाव संबंधित खर्चों के शिकंजे में कांग्रेस भाजपा, जनता दल आदि सभी संसदीय पार्टियाँ फंस गई हैं। 'स्थिरता' की पार्टी, कांग्रेस केन्द्र व कई राज्यों में सरकार का संचालन कर चुकी है; 'स्वच्छ राजनीति' की पार्टी, भाजपा संसद में मुख्य विरोधी पार्टी की भूमिका निभा चुकी है और कई राज्यों में सरकार चला रही है तथा 'सामाजिक न्याय' की पार्टी, जनता दल, रामो–वामो की प्रधान पार्टी के हिसाब से एक तीसरा विकल्प बनकर उभरने की उम्मीद लेकर चल रहा है और कई राज्यों में सरकार का संचालन कर रहा है। लेकिन संसदीय चुनाव से संबंधित खर्चो की अनियमितता एक पर एक घोटाले की वजह से इन तीनों पार्टियों की जो तस्वीर प्रकट हो रही है वह संसदीय प्रणाली के एक भयंकर संकट की सूचना देती है।

भारत की संसदीय प्रणाली की इस उभरती हुई गंदगी का मूल कारण न ढूंढ कर इस पर लीपा–पोती की जा रही है। संसदीय प्रणाली की संसद, विधानसभा व संसदीय पार्टियां अधःपतित हुई हैं। यह संसदीय प्रणाली के समर्थकों ने मान भी लिया है और इसको प्रकट भी किया है। संसदीय व्यवस्था ही ध्वस्त होने के कगार पर पहुँच गई है–इसे भी मजबूरन मान्यता दी गई। लेकिन इसके अद्यःपतन की जड़ इस व्यवस्था के अन्दर ही निहित है–ऐसा कोई सोच–विचार प्रकट नहीं हो रहा है। इस व्यवस्था में खामियों का मूल स्रोत व कारण तो इस व्यवस्था में ही निहित है। इसकी जांच–परख को दर–किनार करके इस गंदगी का कारण व्यक्ति–आधारित बताया जा रहा है।[4]

इस पूंजीवादी समाज में संसदीय प्रणाली के अंदर निहित कारणों की वजह से अधःपतन का मौका लेकर ही भारत के कई एक विख्यात व्यक्ति तानाशाही की स्थापना की शंका प्रकट कर रहे हैं और यहाँ तक कि ऐसा प्रस्ताव भी पेश कर रहे हैं। टाटा गुट के अन्यतम प्रधान विख्यात विधिवेत्ता पालकीवला ने कहा है कि संसदीय प्रणाली के इस संकट की घड़ी का फायदा लेके ही स्वेच्छाचारी ओजस्वी व्यक्तित्व शासन व्यवस्था पर कब्जा करने का प्रयास करता है। भारतीय संसदीय चुनाव से संबंधित अर्थप्रबंधन प्रणाली व इसकी पार्टियां जिस संकट से ग्रसित हुई है इसके परिणाम अत्यंत गंभीर है। भारत की संसदीय प्रणाली ब्रिटिश वेस्ट मिनिस्टर्स सिस्टम का ही एक रूप है। इस संसदीय व्यवस्था की मुख्य संसदीय पार्टियों के भ्रष्टाचार व पूंजीवादी व्यवस्था की अनिवार्य उपज है काला धन। इस काले धन द्वारा व्यापारियों ने संयुक्त रूप से चुनाव से संबंधित अर्थप्रबंधन संसदीय प्रणाली को एक जबरदस्त आघात लगा दिया। परन्तु संसदीय प्रणाली पर इसका क्या असर पड़ेगा। यह सवाल भी आ रहा है कि क्या कांग्रेस व भाजपा, दोनों ही अमरीकी ढाँचे की कार्यकारी राष्ट्रपति की संसदीय व्यवस्था लागू करना चाहते हैं; क्या ये दोनों पार्टियाँ भारतीय संसदीय प्रणाली को स्वेच्छाचारी तानाशाही की ओर धकेल देना चाहती हैं? इसी पृष्ठभूमि में टाटा गुट के विधिवेता पालकीवाला के बयान को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। तो देखिए कि संसदीय प्रणाली में जब इतनी गंभीर स्थिति पैदा हो गई है तब इसके खतरनाक परिणामों के बारे में लोगों को सचेत न करके भ्रष्टाचार व संकटग्रस्त पूंजीवादी व्यवस्था का कारण व्यक्ति–आधारित बताकर लोगों को तानाशाही के बारे में अचेत रखा जा रहा है।[5]

चार साल से इन लोगों ने 'खाओ और खाने दो' की दुर्नीति को ही अपनाया है लेकिन वे एक–दूसरे के बारे में शंकित भी थे। इसके बारे में सभी एक–दूसरे के ऊपर अपनी गिद्ध दृष्टि जमाए हुए थी कि संसदीय राजनीति के शतरंजी खेल में कौन–सी पार्टी क्या चाल चलेगी। तीनों पार्टियां आपस में एक–दूसरे पर ही संदेह कर रही थी कि कौन पहले क्या कदम उठा के दूसरे को फंसा देगी। एकाधिकार पूंजीपति साहू जैन के अखबार 'इकॉनॉमिक टाइम्स' ने 30 जनवरी को उनके राजनैतिक ब्यूरो द्वारा प्रसारित 'दो निबन्ध' में लिखा गया है कि अब भाजपा के दलीय प्रबंधक (पार्टी मैनेजर्स) यह स्वीकार कर रहे हैं कि पार्टी ने जैन बंधुओं से साठ लाख तो अलबत्ता नहीं 25 लाख रूपया लिया है। अखबार आगे लिखता है कि आडवाणी जी ने न ही हवाला धन लिया है और न ही वे जैन भाइयों को पहचानते हैं–ऐसा एक बयान केन्द्रीय जांच ब्यूरों के समक्ष अगस्त 1995 में उन्होंने दिया था। अब भाजपा नेता कह रहे हैं कि उक्त 25 लाख रूपया राजनैतिक दान था। लेकिन 1988 से 1991 के बीच जिस समय आडवाणी जी ने यह दान लिया था। भा0 ज0 पा0 के केन्द्रीय कार्यालय से उस समय के राजनैतिक दान खाते में ऐसे किसी दान का विवरण था ही नहीं। लेकिन अब दलीय प्रबंधक दलील दे रहे हैं कि यह दान एक अलग कोष में जमा किया गया था जिसमें से समाचार–पत्रों में आडबाणी जी की भावमूर्ति तैयार करने के लिए खर्च किया जाता था। भाजपा के बयानों में इस स्वविरोधिता को सच दबाने और झूठ प्रचारित करने के एक जबरदस्त प्रयास के सिवाए और क्या कहा जा सकता है? अतः तीनों मुख्य संसदीय पार्टियों के तीन अध्यक्ष व्यापक

आलोचना के सामने अभी तक कान में तेल डाल कर बैठे हुए हैं। यह है हिन्दुस्तान के विभिन्न राजनीतिक दलों की संसदीय चुनाव प्रणाली में अर्थ प्रबंधन से संबंधित तस्वीर।[6]

इस व्यवस्था को सुधारने के लिए पत्रकार व नेतागण जो नुस्खा परोस रहे हैं इसका विश्लेषण करने से इस सत्य का पता चलता है। ध्यान देने की बात है कि संसदीय प्रणाली की समर्थक पार्टियों के नेतागण व सामाचार–पत्रों के पत्रकार एक मुख्य बात पर एकमत हैं कि राजनीतिज्ञों, अफसरशाहों एवं अपराधियों की तिकड़ी तो संसदीय प्रणाली के अधःपतन का अन्यतम कारण हैं। ये लोग हमेशा ही कहते हैं कि राजनैतिक दलों के नेताओं, व पत्रकारों का 'काले धन' के शिकंजे से मुक्त रहना नितांत जरूरी है लेकिन संसदीय प्रणाली का दोमुंहा चरित्र ऐसा है कि ये सारे नेतागण एक सुर में चुनाव लड़ने के लिए फिर धनराशि बटोरने की जरूरत का जोर–शोर से जिक्र करते हैं और अब तो यहाँ तक मांग कर रहे हैं कि कंपनियों की ओर से राजनैतिक–दान देने में सन् 1968 में लगाई गई कानूनी रोक खत्म की जाए। क्या ऐसी कोई कंपनी है जो सादा और काले धन का एक–साथ ही व्यापार नहीं करती है? क्या ऐसी कोई कंपनी है जो आर्थिक लाभ बटोरने के लिए कानूनी व गैर–कानूनी दोनों तरीकों से ही दान नहीं देती है? कानूनी रोक के बावजूद भी सभी कंपनियाँ सादा और काला धन संसदीय पार्टियों को दे रही हैं और ये सब पार्टियाँ इस धन को ग्रहण कर रही है। जालंधर में 24 जनवरी को एक प्रेस कान्फ्रेंस में बाजपेयी जी ने खुद स्वीकार किया है कि संसदीय पार्टियाँ चुनाव कोष के लिए काला धन भी बटोरती हैं। हवाला काण्ड में लिप्त राजेश पायटल 'कंपनी धन' बटोरने की अपनी कार्रवाइयों को न्यायसंगत चरित्र देने के लिए महात्मा गाँधी जी का सहारा ले रहे हैं। कह रहे हैं कि गाँधी जी ने भी जमनालाल बजाज से आठ हजार रूपया दानस्वरूप लिया था और अपनी दैनिकी (डायरी) में इस सौदे के बारे में यह उन्होंने लिख के रखा था। उल्लेखनीय है कि आजादी आंदोलन में जब गांधी जी ने कंपनियों से दान लिया था तभी शेरे पंजाब लाला लाजपत राय ने गांधी जी को आगाह किया था कि कंपनी धन बटोरने का नतीजा राजनीति और राजनैतिक संगठनों, दोनों के लिए बुरा निकलेगा।[7] उन्होंने गांधी जी को कंपनी–धन ग्रहण न करने को कहा था। राजेश जी ने इतिहास की इस घटना पर इशारा तो किया परन्तु इस घटना पर उन्होंने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। ये भी जिक्र नहीं किया गया है कि कंपनी–दान ग्रहण करने का जो दस्तूर गांधी जी ने चालू किया था उसी का परिणाम है आज आजाद भारत की संसदीय प्रणाली में व्याप्त भ्रष्टाचार।

निष्कर्ष

ब्रिटेन के संसदीय चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा विज्ञापनों, पार्टी के घोषणा पत्रों, पार्टी के राजनैतिक विचारों के प्रसारण, मीडिया के साथ सौदा, परिवहन, रैलियों, प्रेस कांफ्रेसों एवं अन्य आयोजनों पर करोड़ों रूपया खर्च किया जाता है जबकि आज हर भारतीय के अंदर संसदीय चुनाव प्रणाली एवं अर्थप्रबंधन की नीति के बारे में एक गहरी निराशा छा गई है। संसदीय चुनाव संबंधित खर्चों के शिकंजे में कांग्रेस भाजपा, जनता दल आदि सभी संसदीय पार्टियाँ फंस गई हैं।

संदर्भ स्रोतः–

1. डॉ0 ओमप्रकाश राय, भारत की चुनावी राजनीति के बदलते आयाम, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृ. 26
2. वीरवेश्वर प्रसाद सिंह, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृ. 226–228
3. ए0 पी0 वर्मा एण्ड सी0 पी0 भाम्भरी 'इलेक्शन एण्ड पॉलिटिक्स कॉन्शसनेस इन इण्डिया' 1967, पृ. 37
4. जॉन ऑसमुड, फील्ड एण्ड मायरन वीनर 'इलेक्टोरल पालिटिक्स इन द इण्डियन स्टेटस' वोल्यूम– I &II, पृ. 45
5. नॉरमन डी0 पामर, 'इलेक्शन एण्ड पॉलिटिक्स डेवेलोपमेंट' 1975, पृ. 45–46
6. वी0 एम0 सिरसिकर, 'सॉवरेन विदाउट क्रॉउन', पृ. 102
7. ए0 एच0 सोमजी, 'वोटिंग विहैवियर्स इन द इंडियन विपेज' 1959, पृ. 94